□ श्री कुन्दन ऋषि
[संस्कृत प्राकृत के अभ्यासी आचार्य प्रवर के अन्तेवासी]

ऋषि सम्प्रदाय के पाँच सौ वर्ष

□

श्रमण भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात करीब एक हजार वर्ष तक संघ व्यवस्था सुव्यवस्थित रीति से चलती रही। इसके बाद तात्विक सिद्धान्तों में एकरूपता रहने पर भी आचारिक दृष्टि से अनेक प्रकार की विभिन्नताएँ आ गईं। इन्हीं आचार-क्रियाओं के मतभेद को लेकर अनेक गच्छ बन गये और उनमें भी धीरे-धीरे शिथिलता फैलती गई। श्रमण वर्ग में चैत्यवाद का व्यापक प्रसार हो गया। मठों की तरह साधु जन उपाश्रय बना कर रहने लगे। ज्योतिष, गणित, मन्त्र-तन्त्र का भी आश्रय लेकर यश-प्रतिष्ठा प्राप्त करने का प्रयत्न होने लगा। साधुओं ने छड़ी, पालकी आदि बाह्य वैभव को अपनाने के साथ-साथ अपने को 'यति' कहना प्रारम्भ कर दिया। सारांश यह है कि वेशतः साधु रहने पर भी श्रवण वर्ग में आचारिक शिथिलता आने के साथ-साथ वैचारिक दृष्टिकोण बदल गया और कनक-कामिनी का त्यागी वर्ग भी किसी न किसी रूप में लक्ष्मी का उपासक बन गया।

भगवान महावीर के निर्वाण के बाद लगभग एक हजार वर्ष का यह मध्य काल जैन शासन के इतिहास में काफी धुंधला है। इस काल में श्रमण संघ का विकास अवरुद्ध तो हुआ ही साथ ही वह अवनति की ओर भी जा रहा था।

इसी समय में धर्मप्राण क्रान्तिकारी लोंकाशाह का जन्म हुआ। बाल्यकाल से आप प्रतिभाशाली और मेधावी थे। पन्द्रह वर्ष की आयु में शास्त्रों के अध्ययन में अच्छी प्रवीणता प्राप्त कर ली और जैसे-जैसे शास्त्रों की गहराई में उतरे तो स्पष्ट होने लगा कि शास्त्रोक्त साधु-आचार और प्रचलित यति-आचार में कोई तालमेल ही नहीं है। आकाश-पाताल जैसा अन्तर है। धार्मिक क्षेत्र की इस बिरूपता को देखकर लोंकाशाह के मन में एक संकल्प जाग्रत हुआ कि हमारे श्रमण वर्ग की यह वर्तमान स्थिति महावीर शासन को मलिन बना रही है। यदि इसका परिमार्जन नहीं किया गया तो भविष्य में जैनत्व का नामशेष ही रह जायेगा। जनसाधारण तो धार्मिक भावनाओं से विमुख हो ही रहा है और हमारा पूज्य श्रमण वर्ग भी अपने पद के अनुकूल नहीं रहा तो जैन धर्म, दर्शन-संस्कृति और साहित्य के जानकार भी नहीं रहेंगे। इस स्थिति से छुटकारा पाने का एक ही उपाय है कि आगमोक्त सिद्धान्तों से जनता को परिचित करवाया जाये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस संकल्प को कार्यान्वित करने के लिए क्रान्तिदूत लोंकाशाह ने आगमोक्त आचार-विचारों का प्रतिपादन करना प्रारम्भ कर दिया। बुद्धिजीवी वर्ग ने आपके कथन पर चिन्तन-मनन किया और धीरे-धीरे अनेक व्यक्ति उनके अनुयायी बने। महावीर के शुद्ध संयम मार्ग का जोर-शोर से प्रचार करने लगे। प्रचार के साथ-साथ आपके विरोधियों द्वारा षड्यन्त्रों की परम्परा चालू हो गई, लेकिन अपने आत्मबल, सत्यनिष्ठा के द्वारा सब प्रकार के संकटों का मुकाबला करते हुए आप अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करने लगे और आपके सदुपदेश से प्रेरित होकर एक साथ ४५ मुमुक्षुजनों ने साधु-दीक्षा अंगीकार करने की इच्छा व्यक्त की एवं आपके परामर्शानुसार श्री ज्ञान ऋषि जी महाराज के पास दीक्षा ली। बाद में इन ४५ महात्माओं ने अपने उपकारक महापुरुष के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए अपने गच्छ का नाम लोंकागच्छ रखा।

इन ४५ महापुरुषों से प्रारम्भ हुआ लोकागच्छ दिनों दिन प्रगति करता गया। शुद्धआचार-विचारों के समर्थक श्रावक-श्राविकाओं की संख्या-वृद्धि के साथ साधुओं की संख्या में भी आशातीत वृद्धि हुई और करीब ७०-७५ वर्ष के अल्पकाल में ही साधुओं की संख्या ११०० तक पहुँच गई। किन्तु सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम चरण के पश्चात् पुनः चारित्रिक शिथिलता के कारण लोंकागच्छ में ह्रास प्रारम्भ हो गया और आपसी फूट भी पड़ गई। इसके कारण पुनः धार्मिक स्थिति श्री लोंकाशाह के पूर्व जैसी बन गई और इस स्थिति को सुधारने के लिए पुनः संयमपरायण महापुरुष की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

ऐसे समय में श्री लवजी ऋषि जी महाराज धार्मिक क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी के रूप में अवतीर्ण हुए। इन महापुरुष ने अनेक उपसर्गों का सामना करते हुए संयम मार्ग का उद्धार किया। आप श्री ऋषि सम्प्रदाय के आप संस्थापक हैं। उनके द्वारा प्रारम्भ की गई क्रियोद्धार की परम्परा आज तक अबाध गति से चल रही है।

पूज्य श्री लवजी ऋषि जी महाराज

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुर्जर देशीय लोंकागच्छ के पाट पर श्री बजरंग ऋषि जी महाराज विराजमान थे। सूरत निवासी धार्मिक-आचार विचार सम्पन्न कोट्याधीस श्री वीर जी बोरा आपके परम भक्त और अनुरागी थे। आपके एक सुपुत्री थीं। उसका नाम फूलाबाई था। फूलाबाई का विवाह सूरत के ही एक श्रेष्ठि पुत्र से हुआ था, लेकिन दैवयोग से युवावस्था में ही फूलाबाई के पति का देहावसान हो गया। आपके एक होनहार सुपुत्र था। जिसका नाम लवजी था।

पति वियोग के पश्चात् फूलाबाई पिता के यहाँ रहने लगीं। माता एवं नाना के धार्मिक संस्कारों का बालक पर पूरा प्रभाव पड़ा। सात वर्ष की उम्र में ही सामायिक, प्रतिक्रमण के पाठों को कंठस्थ कर लिया लेकिन इसकी जानकारी किसी को भी नहीं होने दी।

किसी एक दिन फूलाबाई बालक लवजी को लेकर श्री बजरंगजी महाराज के दर्शन करने आई और बालक को सामायिक, प्रतिक्रमण आदि की शिक्षा देने की विनती की। बालक लवजी को भी गुरु महाराज के दर्शन करने एवं सामायिक, प्रतिक्रमण के पाठ सीखने की शिक्षा दी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माता की बात सुनकर बालक लवजी ने बताया कि माताजी सामायिक, प्रतिक्रमण तो मुझे याद है। इसको सुनकर और पूरी जानकारी होने पर माता के हर्ष का पार न रहा। श्री बजरंग स्वामी बालक की प्रतिभा, स्मरण शक्ति आदि को देखकर फूलाबाई से बोले कि यह बालक कुशाग्र बुद्धि का है, इसे जैनागमों का अभ्यास कराओ। माता ने इसके लिए अपनी अनुमति प्रदान कर दी।

फूलाबाई की प्रार्थना अंगीकार करके श्री बजरंग स्वामी ने बालक लवजी को जैनागमों का अभ्यास कराना प्रारम्भ कर दिया और थोड़े से समय में ही दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, निशीथ, दशाश्रुतस्कन्ध, वृहत्कल्प आदि शास्त्रों का तलस्पर्शी अभ्यास कराया। शास्त्रों के पढ़ने और उनका मर्म समझ लेने से बालक लवजी को संसार से वैराग्य हो गया। गुरुजी भी बालक की इस मनोवृत्ति को समझ गये।

वीराजी और फूलाबाई को लवजी की विद्वत्ता की जानकारी हुई तो उन्होंने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए श्री बजरंग ऋषि जी का बहुत आदर-सत्कार किया।

श्री लवजी शास्त्र ज्ञाता थे और तत्कालीन साधु आचार को देखकर बार-बार विचार करते तो हृदय में खेदखिन्न हो जाते थे। साधुसंस्था में व्याप्त शिथिलताचार कैसे दूर हो और पुनः आगमानुकूल आचार का प्रसार हो, इसके लिए विचार करते थे। अन्त में इस निश्चय पर पहुँचे कि शिथिलाचारी साधुओं को सुधारने का सर्वोत्तम मार्ग यही है कि मैं स्वयं साधु दीक्षा अंगीकार करके आदर्श उपस्थित करूँ। अपनी भावना को नानाजी व माताजी के सामने रखा। उन्होंने आपको अनेक प्रलोभन दिये, समझाया, परीक्षा ली और अन्त में श्री बीरजी को मानना पड़ा कि अब लवजी को दीक्षा लेने से रोकना ठीक नहीं है। लेकिन इसके साथ यह शर्त रखी कि दीक्षा श्री बजरंग जी के पास लेनी होगी।

बीरजी की उक्त शर्त सुनकर श्री लवजी श्री बजरंग ऋषिजी महाराज से मिले और भविष्य के सम्बन्ध में स्पष्टता कर ली कि अगर आपके और मेरे बीच आचार-विचार सम्बन्धी मतभेद नहीं उत्पन्न हुआ और ठीक तरह से आगमानुसार निभाव होता रहा तो आपकी सेवा में रहूँगा अन्यथा दो वर्ष बाद मैं स्वतन्त्र पृथक रूप से विचरण कर सकूँगा। श्री बजरंग ऋषिजी ने इस शर्त को स्वीकार किया। आपने सं० १६९२ में श्री बजरंग ऋषि जी से दीक्षा अंगीकार की।

श्री बजरंग ऋषिजी ने आपको शास्त्रों का और अधिक अभ्यास कराया। तत्वज्ञान की प्रौढ़ता के साथ आचार भिन्नता, शिथिलता के प्रति आपकी विरक्ति बढ़ती गई। गुरुदेव से इस शिथिलता को दूर करने के लिए निवेदन किया, किन्तु वे अपनी वृद्धावस्था के कारण इसके लिए कुछ कर सकने में उदासीन ही रहे और श्री लवजी ऋषिजी को क्रियोद्धार करने की आज्ञा दी।

गुरुदेव की आज्ञा पाकर श्री लवजी ऋषिजी अपने साथ श्री थोभण ऋषिजी और श्री भानुऋषि नामक दो सन्तों को लेकर सूरत से खंभात पधारे। प्रतिदिन व्याख्यान होते और जनता में आपकी वाणी का प्रभाव फैलने लगा। खंभात के प्रमुख श्रेष्ठियों, प्रभावशाली व्यक्तियों और अन्य भाई-बहनों ने आपके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेशों की प्रशंसा करते हुए धर्म प्रचार में तन, मन, धन से सहयोग देने का निवेदन किया। श्री लवजी ऋषिजी महाराज ने भी उनके भावों को जानकर कहा कि मेरी भावना भी सिद्धान्तानुसार शुद्ध क्रिया के पालन करने की है और आप लोग क्रियोद्धार के कार्य में सहायक हों तो मैं पुनः शुद्ध संयम ग्रहण करके क्रिया का उद्धार करूँ। इसी के लिए मैं गुरुजी से पृथक् हुआ हूँ। इस कथन को सभी ने स्वीकार किया।

इसके अनन्तर श्री लवजी ऋषिजी, श्री थोभण ऋषिजी और श्रीभानु ऋषिजी महाराज ठाणा ३ खंभात नगर के बाहर एक बगीचे में पधारे और पूर्व दिशा के सन्मुख खड़े होकर श्री संघ की साक्षी पूर्वक पुनः भागवती दीक्षा अंगीकार की और शास्त्रानुसार आचार पालन करने-कराने का निश्चय किया।

खम्भात से विहार कर विभिन्न क्षेत्रों में धर्म के स्वरूप को बतलाते हुए आपने शिथिलाचार के उन्मूलन का कार्य प्रारम्भ कर दिया। इधर यति वर्ग में आपके प्रचार से खलबली मच गई थी। उनके षड्यन्त्रों के फलस्वरूप खम्भात के नवाब द्वारा आपको नजर कैद भी किया गया लेकिन अन्त में धर्म के प्रभाव से आप मुक्त हुए। खम्भात के बाद विहार करते हुए आप अहमदाबाद पधारे। वहाँ भी जिन मार्ग का रहस्य समझाना प्रारम्भ कर दिया, फलस्वरूप अनेक प्रभावशाली व्यक्ति आपके अनुयायी बने। यहीं पर लोंकागच्छीय यतिशिवजी ऋषि के शिष्य श्री धर्मसिंह जी महाराज से मिलाप हुआ और वे भी आपके मार्ग को सत्य मानकर क्रियोद्धार के मार्ग में सहयोगी बन गये।

अहमदाबाद से बिहार कर गुजरात, काठियावाड़, मारवाड़, मेवाड, मालवा आदि में धर्म-प्रचार द्वारा भव्य जीवों को बोध देते हुए पुनः गुजरात में पधारे और सूरत में चातुर्मास किया। सूरत के लिए आप अपरिचित नहीं थे। जनता आपसे अत्यन्त प्रभावित हुई। इस चातुर्मास काल में श्री सखिया जी भंसाली को भागवती दीक्षा प्रदान की। अब आप चार ठाणा हो गये थे।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात आप पुनः अहमदाबाद पधारे और यहाँ पर २३ वर्षीय सुश्रावक श्री सोमजी को सं० १७१० में भागवती दीक्षा प्रदान की। यहीं पर यतियों के षड्यन्त्र से मुनि श्री भानु ऋषिजी को तलवार से मार डाला गया। इस हत्या का पता भी लग गया लेकिन आपके समझाने से श्रावकों ने हत्या का बदला लेने के लिए राज्याश्रय नहीं लिया।

गुजरात काठियावाड़ को स्पर्शते हुए एक बार आप बुरहानपुर पधारे। यहाँ यतियों का काफी जोर था। यतियों के बहकावे में आकर श्रीलवजी ऋषिजी महाराज के अनुयायी श्रावकों को जाति बहिष्कृत करवा दिया। उनका कुँओं से पानी भरना तक बन्द करवा दिया। इस की फरियाद बादशाह तक पहुँच गई और यतियों के सभी प्रकार के षड्यन्त्रों का भण्डाफोड़ हो गया। लेकिन यति अपने कृत्यों से बाज नहीं आ रहे थे। अन्त में ऐसा समय आया कि बुरहानपुर में रंगारिन के हाथ से विषमिश्रित लड्डू को बहराने का षड्यन्त्र रचाकर आप श्री की हत्या कर दी गई।

पूज्य श्री लवजी ऋषिजी का पार्थिव देह नहीं रहा किन्तु आपने जो क्रान्ति का बीज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोया वह दिनोंदिन फलता-फूलता ही गया और पाटानुपाट प्रभावक आचार्यों ने जिन शासन की दीप्ति को तेजस्विनी बनाया।

पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी महाराज

आप पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज से दीक्षित हुए थे और उनके बाद आप उनके उत्तराधिकारी आचार्य बने। अहमदाबाद में पूज्य श्री धर्मसिंह जी महाराज से आपका समागम हुआ और अनेक शास्त्रीय बातों पर चर्चा हुई। पूज्य श्री धर्मसिंह जी की धारणा थी कि अकाल में आयुष्य नहीं टूटता है तथा श्रावक की सामायिक आठ कोटि से होती है। पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी म० का समाधान युक्तिसंगत प्रतीत हुआ और मुनि श्री अमीपालजी और श्रीपालजी, पूज्य श्री धर्मसिंह जी से पृथक् होकर पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी के शिष्य बन गये। इसके बाद लोंकागच्छ की ही एक शाखा कुँवरजी गच्छ के श्री ऋषि प्रेमजी, बड़े हरजी, छोटे हरजी म० भी पूज्य श्री धर्मसिंह जी महाराज को छोड़कर पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी म० की नेश्राय में विचरने लगे। इधर मारवाड़ के नागौरी लोंकागच्छ के श्री जीवाजी ऋषिजी भी पुनः संयम अंगीकार कर आपकी आज्ञा में विचरने लगे। इसी प्रकार श्री हरदासजी महाराज भी लाहौर में उत्तरार्द्ध लोकागच्छ का त्याग करके आपके अनुगामी बने।

पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी म० के व्यापक प्रचार, प्रभाव का देश के सभी स्थानों पर असर हुआ और अनेक सन्तों ने शुद्ध संयम मार्ग अंगीकार किया एवं बहुत से श्रावकों ने भी भागवती दीक्षा अंगीकार की, जिससे शासन प्रभावना को वेग मिला।

पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी म० २७ वर्ष तक संयम पालन करके ५० वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हो गये। आपके बाद पूज्य पदवी कहानजी ऋषिजी म० को प्रदान की गई।

पूज्य श्रीसोमजी ऋषिजी प्रभावक सन्त थे। आपका शिष्यत्व अनेक भव्यात्माओं ने स्वीकार किया और अपने-अपने क्षेत्र में विशेष प्रभावशाली होने से कहीं पर सन्तों के नाम से, कहीं क्षेत्र के नाम से वे शाखाएँ जानी पहचानी जाती थीं। जैसे श्री गोधाजी म० की परम्परा, श्री परशराम जी म० की परम्परा, कोटा सम्प्रदाय, पूज्य श्री हरदास ऋषिजी म० की सम्प्रदाय (पंजाब शाखा) आदि।

इन शाखाओं में अनेक प्रभावशाली आचार्य हुए और अपने तपोपूत संयम द्वारा जैन शासन की महान सेवाएँ कीं और कर रहे हैं। इन सब शाखाओं की विशेष जानकारी विभिन्न सम्प्रदायों के इतिहासों में दी गई है।

पूज्यश्री कहान ऋषिजी महाराज

आपका जन्म सूरत में हुआ था। स्वभाव से सरल और धार्मिक आचार-विचार वाले थे। आपने सं० १७१३ में सूरत में पूज्य श्री सोमजी ऋषिजी म० से भागवती दीक्षा अंगीकार की। अच्छा ज्ञानाभ्यास किया और पूज्य श्री लवजी ऋषिजी म० के कार्य का व्यापक रूप से विस्तार किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुजरात में धर्म प्रचार करते हुए आप मालवा में पधार गये और आज भी मालवा में ऋषि सम्प्रदाय के सन्त सती पूज्यश्री कहानजी ऋषिजी म० के ही माने जाते हैं। आपके श्री ताराऋषिजी म० श्री रणछोड़ ऋषिजी म० आदि प्रभावक शिष्य थे। आपके देहोत्सर्ग के पश्चात श्री रणछोड़जी ऋषिजी म० और श्री तारा ऋषिजी म० क्रमशः गुजरात, काठियावाड़ में और मालवा में विचरे और दोनों को पूज्य पदवी प्रदान की गई।

ऋषि सम्प्रदाय इतनी विस्तृत हो गई थी कि पहचान के लिए भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के नाम पर उनके नाम पड़ गये। इन सभी शाखाओं के पूज्यों और सन्तों ने क्रियोद्धार कर धर्म का खूब उद्योत किया। पूज्यश्री तारा ऋषिजी म० के बाद खम्भात शाखा में क्रमशः श्री मंगल ऋषिजी म०, श्री रणछोड़ जी म०, श्री नाथा ऋषिजी म०, श्री बेचरदास जी म० पूज्य पदवी पर आसीन हुए।

इसके बाद श्री माणक ऋषिजी म०, श्री हरखचन्द जी म०, श्री मानजी ऋषिजी म०, श्री छगनलाल जी म० आदि पूज्य बने। पूज्य श्री ताराऋषि म० के समय में ऋषि सम्प्रदाय खम्भात और मालवीय शाखा में विभक्त हो गया था। मालवीय शाखा के पूज्य श्री काला ऋषिजी म० हुए। पूज्य श्री काला ऋषिजी म० के मालवा क्षेत्र में विहार होने से अनेक मुमुक्षुओं ने संयम ग्रहण किया और उनमें से अनेक ज्ञानी ध्यानी प्रभावक सन्त रहे हैं। मालवीय शाखा का विहार क्षेत्र मालवा, मेवाड़, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़ और उत्तर प्रदेश के अनेक गाँव और नगर रहे हैं। मालवीय शाखा में अनेक विद्वान संत हुए हैं। जिनमें से कुछ एक नाम इस प्रकार हैं—पूज्य श्री वक्षुऋषिजी म०, श्री पृथ्वीऋषिजी म०, श्री सोमजी ऋषिजी म०, श्री भीमजी ऋषिजी म०, तपस्वी श्री कुँवर ऋषिजी म०, श्री टेकाऋषिजी म०, श्री हरखाऋषिजी म०, श्री कालूऋषिजी म०, श्री रामऋषिजी म०, श्री मिश्री ऋषिजी म०, श्री जसवन्त ऋषिजी म०, श्री चम्पक ऋषिजी म०, श्री हीरा ऋषिजी म०, श्री भैरव ऋषिजी म०, श्री दौलत ऋषिजी म० (छोटे), श्री सुखाऋषिजी म०, श्री अमीऋषिजी म०, श्री रमाऋषिजी म०, श्री रामऋषिजी म०, श्री ओंकार ऋषिजी म०, श्री धोगाऋषिजी म०, श्री देवऋषिजी म०, श्री माणक ऋषिजी म० आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उन सबका यहाँ परिचय देना सम्भव नहीं होने से कतिपय प्रमुख यशस्वी सन्तों का यहाँ परिचय देते हैं।

पं० रत्न श्री अमीऋषिजी महाराज

आपका जन्म सं० १९३० में दलौद (मालवा) में हुआ था। पिता श्री का नाम श्री भेरूलालजी और मातु श्री का नाम प्यारीबाई था। मगसिर कृष्णा ३ सं० १९४३ को श्री सुखाऋषिजी म० के पास मगरदा (भोपाल) में आपने भागवती दीक्षा अंगीकार की थी। आपकी बुद्धि और धारणाशक्ति अत्यन्त तीव्र थी। शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे। शास्त्रीय और दार्शनिक चर्चा में आपको विशेष रुचि थी। आप जितने तत्वज्ञ थे उतने ही सुयोग्य लेखक भी थे। आप द्वारा २३ ग्रन्थ रचे गये जो आपकी विद्वता की स्पष्ट झलक बतलाते हैं। आपकी काव्य शैली अनूठी थी। साहित्यिक दृष्टि से आपने अनेक चित्र-काव्यों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की रचना की है जिनमें से अनेक ग्रन्थ श्री अमोल जैन ज्ञानालय धूलिया से प्रकाशित भी हो चुके हैं। जयकुंजर आपकी बड़ी ही सुन्दर रचना है।

मालवा, मेवाड़, मारवाड़, गुजरात, महाराष्ट्र आदि क्षेत्रों में विहार कर जिन शासन का उद्योत किया है। सं० १९८२ में आप महाराष्ट्र में पधारे और ऋषि सम्प्रदाय के संगठन के लिए बहुत प्रयत्न किया। आपने ४५ वर्ष तक संयम पाला, सं० १९८८ वैशाख शुक्ला १४ को आप शुजालपुर (मालवा) में कालधर्म को प्राप्त हुए।

मालवा प्रान्त में आप द्वारा अनेक भागवती दीक्षाएँ सम्पन्न हुई।

पूज्य श्री देवऋषिजी म०

आपके पिताश्री का नाम श्री जेठाजी सिंघवी और माता का नाम श्रीमती मीराबाई था। सं० १९२९ दीपमालिका के पुण्य दिवस पर आपका जन्म हुआ था। ग्यारह वर्ष की उम्र में मातुश्री का वियोग हो गया। सूरत में आपकी भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। इसी अवसर पर ऋषि सम्प्रदाय की खम्भात शाखा के सन्त सतियों का सम्मेलन भी हुआ।

आप महान तपस्वी थे। सं० १९५८ से लेकर सं० १९८१ तक २३ वर्षों में १ से लेकर ४१ दिन की कड़ीबन्द और प्रकीर्णक तपस्यायें कीं। आपका विहार भारत के सभी प्रान्तों में हुआ। विशेषकर महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश में विहार कर आपने जैन धर्म की प्रभावना की। सं० १९८९ में ऋषि सम्प्रदाय के संगठन और आचार्य पदवी महोत्सव के निमित्त आप इन्दौर पधारे। आपके वरदहस्त से आगमोद्धारक पं० र० मुनि श्री अमोलक ऋषिजी म० को आचार्य पद की चादर ओढ़ाई गई।

सं० १९९३ में आपका चातुर्मास नागपुर में था। इसी बीच धूलिया में पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० सा० का देवलोक हो गया था। सं० १९९३ माघ कृष्णा ५ को आपको भुसावल में पूज्य पदवी की चादर ओढ़ाई गई। आप काफी वृद्ध थे अतः आपने उसी समय स्पष्ट कर दिया कि मैं इस गुरुतर भार को वहन करने में असमर्थ हूँ अतः सम्प्रदाय के संचालन का उत्तरदायित्व पं० र० श्री आनन्द ऋषिजी म० को सौंपा जाता है और उन्हें युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया जाता है।

सं० १९९९ का चातुर्मास करने आप नागपुर इतवारी पधारे। शरीर काफी वृद्ध हो गया था लेकिन स्वास्थ्य साधारणतया ठीक ही था। अकस्मात लकवे की शिकायत हो गई जो आयुर्वेदिक चिकित्सा से कुछ ठीक हो गई।

इसी समय इतवारी में साम्प्रदायिक दंगा हो जाने से श्रावकों की विनती पर आप सदर बाजार पधार गये। चातुर्मास काल में तबियत नरम ही रही। मगसिर कृष्णा ४ को आपको घबराहट काफी बढ़ गई। सभी सन्त सतियों एवं युवाचार्य श्री आनन्द ऋषिजी म० को सम्प्रदाय की व्यवस्था सम्बन्धी समाचार श्रावकों के माध्यम से भिजवा दिये। मगसिर कृष्णा ७ को तबियत में और अधिक बिगाड़ आ गया। दूसरे दिन आपने उपवास किया और नवमी को संलेखना सहित चौ विहार प्रत्याख्यान कर लिया। नवमी की रात्रि को आपने इस नश्वर शरीर का परित्याग कर दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० (आगमोद्धारक)

आपके पूर्वज मेडता (मारवाड़) के निवासी थे। लेकिन वर्षों से भोपाल (म० प्र०) में बस गये थे। आपके पिताश्री का नाम केवलचन्दजी और माता का नाम हुलासाबाई था। आपका जन्म सं० १९३४ में हुआ था। आपके एक छोटा भाई था। जिसका नाम अमीचन्द था। बाल्यकाल में माता का वियोग हो जाने से आप दोनों भाई मामा के यहाँ रहने लगे और पिताजी ने मुनिश्री पूनम ऋषिजी म० के पास भागवती दीक्षा ले ली थी।

एक बार आप अपने मामाजी के मुनीम के साथ अपने पिता श्री जी (श्री केवलऋषिजी म०) के दर्शनार्थ इच्छावर के निकट खेड़ी ग्राम में दर्शनार्थ आये। आप बाल्यकाल से धार्मिक वृत्ति वाले थे ही और पिताजी को साधुवेष में देखकर आपकी धार्मिकता को और वेग मिला। आपने भी दीक्षा अंगीकार करने का निश्चय कर लिया। पारिवारिक जनों ने रुकावट डालने का प्रयास भी किया लेकिन सफल नहीं हो सके।

सं० १९४४ फाल्गुन कृष्णा २ को श्री रत्न ऋषिजी म० ने आपको दीक्षित किया। आप बहुत ही प्रभावशाली, प्रखर बुद्धि और शास्त्रज्ञ विद्वान थे। आपने ऋषि सम्प्रदाय को सबल बनाया और सबसे महत्वपूर्ण कार्य ३२ आगमों को हिन्दी अनुवाद एवं शुद्ध पाठ सहित सम्पादित करना है। यह आगमोद्धार का कार्य आपने तीन वर्ष के अल्पकाल में ही पूरा कर दिया था। साहित्य सम्पादन के अतिरिक्त आपने ७० स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें से कई ग्रन्थों की गुजराती, मराठी, कन्नड़, उर्दू भाषा में भी आवृत्तियाँ हुई हैं। पूज्य श्री ने कुल मिलाकर करीब ५० हजार पृष्ठों में साहित्य की रचना की है। आपके १२ शिष्य हुए।

आप पंजाब, दिल्ली, कोटा, बूंदी, इन्दौर आदि क्षेत्रों को फरसते हुये धूलिया पधारे और सं० १९९३ का चातुर्मास धूलिया में किया। इस चातुर्मास काल में आपके कान में तीव्र वेदना हो गई। अनेक उपचार कराने पर भी वह शान्त नहीं हुई। अन्त में प्रथम भाद्रपद कृ० १४ को आपने संथारा पूर्वक इस भौतिक देह का परित्याग कर दिया। आपकी पुण्य स्मृति में मुनि श्री कल्याणऋषि जी म० की सत्प्रेरणा से श्री अमोल जैन ज्ञानालय की धूलिया में स्थापना हुई। जिसके द्वारा साहित्य प्रकाशन का कार्य चल रहा है।

कविकुल भूषण पूज्यपाद श्री तिलोकऋषि जी महाराज

आपकी जन्मभूमि रतलाम है। सं० १९०४ चैत्र कृ० ३ को आपका जन्म हुआ था। पिताश्री का नाम श्री दुलीचन्द जी सुराना और माता का नाम नानूबाई था। आप तीन भाई और एक बहिन थी। आपका नाम तिलोकचन्द जी था।

सं० १९१४ में श्री अयवन्ताऋषि जी म० रतलाम पधारे। आपका वैराग्यरस से परिपूर्ण उपदेश सुनकर माता नानूबाई का वैराग्य भाव जाग्रत हो उठा। माताजी के दीक्षित होने के भाव जानकर बहिन हीराबाई भी दीक्षित होने को तैयार हो गई। माता और बहिन के दीक्षा लेने के विचार को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानकर तिलोकचन्द जी को भी संसार से उदासीनता हो गई। इस प्रकार परिवार के तीन सदस्यों को दीक्षा लेने का जानकर आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री कुंवरमल जी ने सोचा कि मुझे इनसे पीछे नहीं रहना चाहिए। ऐसा सुअवसर फिर मिलने वाला नहीं और आप भी दीक्षा लेने को तत्पर हो गये।

इस प्रकार एक ही परिवार के चार मुमुक्षुओं के संयम मार्ग को अंगीकार करने की जानकारी से रतलाम संघ में हर्ष छा गया। संघ ने बड़े ही उत्साह से इस मंगल कार्य को पूर्ण करने का निश्चय किया और सं० १९१४ माघ कृ० १ को यह जैनेश्वरी दीक्षाएँ सम्पन्न हुईं। श्री तिलोकचन्द जी श्री तिलोक ऋषि के नाम से सन्त-मण्डली में विख्यात हो गये।

दीक्षा के समय आपकी उम्र दश वर्ष की थी। प्रतिभा विलक्षण होने से करीब १८ वर्ष की उम्र तक आते-आते आपने अनेक आगम कंठस्थ कर लिए एवं संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी आदि भाषाओं में निपुणता प्राप्त कर ली।

सं० १९२२ में आपके गुरुदेव श्री अयवंता ऋषि जी म० के देहावसान से आपको मार्मिक व्यथा हुई, लेकिन संसार के स्वरूप से परिचित थे अतः और अधिक गम्भीरता से ज्ञानाभ्यास में लीन हो गये। मालव प्रदेश के विभिन्न नगरों और ग्रामों में धर्म प्रभावना करते हुए सं० १९३५ में दक्षिण प्रान्त में पधारने की विनती के कारण आपने ठा० ३ से दक्षिण की ओर विहार किया और चैत्र वदी ९ को आप घोड़नदी पधार गये।

दक्षिण प्रान्त में जैन सन्तों के पदार्पण का यह वर्तमान युग में प्रथम अवसर था। उधर के श्री संघों में अपूर्व आनन्द और उत्साह व्याप्त हो रहा था। अहमदनगर की धर्मशीला बहिन श्रीमती रम्भाबाई पीतलिया ने पूज्यपाद श्री तिलोकऋषि जी म० के अहमदनगर पधारने की सूचना देने वाले भाई को तो अपना सोने का कड़ा ही बधाई में दे दिया था।

सं० १९४० का चातुर्मास अहमदनगर में था। स्वास्थ्य सब प्रकार से अनुकूल था। लेकिन अकस्मात स्वास्थ्य गड़बड़ हो गया और श्रावण कृष्णा २ को आप कालधर्म को प्राप्त हो गये।

इस थोड़े से समय में आपने समाज, साहित्य और आचार-विचार, सिद्धान्त के क्षेत्र में जो भी कार्य किये, उनका इतिहास की दृष्टि से मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। पूज्यपाद रचित साहित्य अनूठा है। बहुत से ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं, फिर भी अनेक ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। कवित्व शक्ति तो आपकी अनूठी ही थी जिसकी 'कहत तिलोक रिख' धुन जन साधारण की वाणी द्वारा बार-बार गूँज उठती है। 'ज्ञानकुंजर' और 'चित्रालंकार' काव्य तो आपकी 'विद्वत्ता, कवित्व प्रतिभा के अनूठे ही ग्रन्थ हैं। कवि के अलावा आप सुलेखक थे। दशवैकालिक सूत्र पूर्ण एक पन्ने में एवं डेढ़ इन्च जगह में पूरी आनुपूर्वी लिखकर आपने अपनी लेखन-कला की पराकाष्ठा का परिचय दिया है। आप द्वारा रचित शीलस्थ आपकी चित्रकला के कौशल को प्रकट कर देता है। आपकी सभी कलाओं का एकमात्र लक्ष्य धर्मकला ही था।

मात्र ३६ वर्ष के अल्प आयुकाल में आपने जो कीर्ति, धर्मज्ञान एवं योग्य प्राप्त की थी वह सब आपके पूर्व पुण्य का ही परिपाक माना जायेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्यपाद श्री रत्नऋषि जी महाराज—

आप वोता (मारवाड़) के मूल निवासी थे। लेकिन आपके पिताश्री स्वरूपचन्द जी (जिन्होंने आपके साथ सं० १९३६ में पूज्य श्री तिलोकऋषि जी म० के पास भागवती दीक्षा अंगीकार की थी) अहमदनगर जिला के मानक दोंडी ग्राम में व्यापारार्थ रहते थे। वहीं आपकी माताजी श्रीमती धापूबाई का स्वर्गवास हो गया था। अपने परिवार में आप और आपके पिता यही दो सदस्य रह गये थे। माताजी के देहावसान के समय आपकी उम्र करीब १२ वर्ष की थी। आपके पिताजी संसार से उदासीन जैसे रहते थे और पुत्र को सुयोग्य बनाने की भावना रखते थे।

इन्हीं दिनों सं० १९३५ में पूज्य श्री तिलोक ऋषि जी म० के धोड़नदी पधारने के समाचार मिले और इससे आपके पिताजी के हर्ष का पार न रहा और अपने पुत्र के साथ धोड़नदी आ गये और वहीं अपना निवास स्थान बनाकर रहने लगे।

सं० १९३६ में श्री गम्भीरमल जी लोढ़ा की धर्मपत्नी और पुत्री की घोड़नदी में भागवती दीक्षा हुई। आपके पिता श्री स्वरूपचन्द जी भी विरक्त थे ही और वे भी दीक्षा लेने के लिए तत्पर हुये। आप भी पिताश्री के अनुगामी बनने के लिए अग्रसर हो गये। पिता-पुत्र ने पूज्यपाद श्री त्रिलोकऋषि जी म० के समक्ष अपनी भावना व्यक्त की। कुटुम्बी जनों ने अनेक प्रलोभन दिये लेकिन उन्हें दीक्षित होने से विचलित नहीं कर सके। अन्त में उन्होंने पिता व पुत्र को दीक्षा अंगीकार करने की स्वीकृति दे दी और सं० १९३६ आषाढ़ शु० ई० ९ को दोनों की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। श्री स्वरूपचन्द जी का नाम श्री स्वरूप ऋषि जी म० और आपका नाम श्री रत्नऋषि जी म० रखा गया।

आपको दीक्षित हुए चार वर्ष भी नहीं हुए थे कि गुरुदेव श्री तिलोक ऋषि जी म० का सं० १९४० में स्वर्गवास हो गया। श्री रत्नऋषि जी म० युवा थे, प्रतिभाशाली और विद्वान थे, लेकिन उन दिनों दक्षिण में दूसरे विद्वान संतों के न रहने से आपको लेकर महासती श्री हीरा जी मालवा में आईं और योग्य शिक्षा का प्रबन्ध कराया और शुजालपुर में विराजमान स्थविर मुनिश्री खूबऋषि जी म० के पास रहकर शास्त्राभ्यास प्रारम्भ कर दिया। शास्त्राभ्यास से आपकी व्याख्यान शैली भी सुन्दर हो गई। मालवा में विहार कर आपने अच्छा शास्त्राभ्यास कर लिया था और प्रवचन शैली में प्रवीण होने से जन-साधारण में भी प्रसिद्ध हो चुके थे। लेकिन आपका लक्ष्य प्रसिद्धि प्राप्त करना नहीं था।

मालवा में विहार करने के अनन्तर आपने गुजरात की ओर विहार किया और वहाँ विराजित अनेक प्रभावशाली विद्वान सन्तों, आचार्यों आदि से आपका सम्पर्क हुआ। गुजरात में कुछ समय विचरने के बाद आप पुनः महाराष्ट्र में पधार गये। महाराष्ट्र में आकर आपने जैन संघ की स्थिति का गम्भीरता से निरीक्षण किया। यद्यपि आर्थिक दृष्टि से जैन समाज की स्थिति साधारणतया ठीक थी, लेकिन अंधश्रद्धा, अशिक्षा और बेकारी के कारण जैन नवयुवकों में शून्यता फैल रही थी। अनेक क्षेत्रों में विहार और चातुर्मास होने से सब कुछ जानकारी कर ली गई थी। इसके प्रतिकार के लिए आपने सं० १९७७ के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहमदनगर चातुर्मास में श्री संघ को संकेत किया और जैन ज्ञान फंड की स्थापना की गई। पश्चात सं० १९८० में श्री तिलोक जैन पाठशाला की पाथर्डी में स्थापना हुई जो आज हाईस्कूल के रूप में चल रही है। अंधश्रद्धा के उन्मूलन के लिए तो आपने प्रत्येक क्षेत्र में प्रयत्न किया। इसका परिणाम यह हुआ कि जैनत्व के संस्कारों का दिनोंदिन विकास होता गया और अनेक स्थानों पर शिक्षण शालाएँ, स्वधर्मी फंड आदि स्थापित हुए।

पाथर्डी में आज जो भी संस्थाएँ चल रही हैं या नवीन स्थापित हुई हैं, उन सब के मूल में आपकी प्रेरणा, आशीर्वाद रहे हैं। ये सभी संस्थाएँ जनता में सद्धर्म का प्रसार कर जैनत्व की कीर्ति को व्यापक बना रही हैं।

महाराष्ट्र में आज स्थानकवासी जैन समाज में जो साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना है, शिक्षा क्षेत्र में जो प्रगति हो रही है उसका श्रेय यदि किसी को दिया जाना है तो वह श्री पूज्यपाद श्री रत्नऋषि जी म० को ही मिलेगा। आपके हाथों में ही श्रमण संघ के वर्तमान ज्योतिर्धर आचार्य प्रवर श्री आनन्द ऋषिजी म० का जीवन-पुष्प खिला है, इस महिमाशाली व्यक्तित्व का निर्माण इन्हीं हाथों ने किया है जो आपकी कीर्ति का जीता-जागता प्रमाण है।

आप श्री ने श्रावकों को सुसंस्कृत बनाने के साथ-साथ सन्तों को भी योग्य विद्वान बनाने की ओर ध्यान दिया। योग्य विद्वानों का सहयोग लेकर अपने शिष्यों को शिक्षा दिलाई। उन्हें तात्विक ज्ञान के साथ प्राच्य भाषाओं में भी निपुण बनाने की ओर ध्यान दिया।

सं० १९८३ का चातुर्मास भुसावल में हुआ। निकटवर्ती क्षेत्रों में विहार करते हुए हिंगनघाट की ओर पधारे। रास्ते में कानगाँव के निकट आपको साधारण सा बुखार हो गया, दूसरे दिन अलीपुर ग्राम में दाहज्वर हो गया। परिस्थितियों को देखकर आपने वहीं एक मन्दिर में सागारी संथारा कर लिया और सं० १९८४ जेष्ठ कृष्णा ७ के मध्याह्न इस नश्वर देह का परित्याग कर दिया।

पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज

आप श्री का परिचय सर्व विश्रुत है। आपकी विद्वता, ज्ञानगरिमा और संयमसाधना से समग्र जैन शासन गौरवान्वित है। संक्षेप में आपके परिचय के लिये इतना ही कहा जा सकता है कि पूज्यपाद श्री त्रिलोक ऋषिजी म०, पूज्यपाद श्री अमोलक ऋषिजी म०, पूज्यपाद श्री रत्न ऋषिजी म० इन तीनों महापुरुषों के सभी गुण आप में पुंजीभूत होकर साकार हो रहे हैं। आपने चतुर्विध संघ की उन्नति में जो योगदान दिया और इस वृद्धावस्था में भी उत्साहपूर्वक तत्पर हैं, वह एक धर्माचार्य के आदर्श में तो वृद्धि कर ही रहा है, जन साधारण को भी मानव जीवन सफल बनाने का मार्ग बतलाता है। आपश्री का विशेष परिचय अन्यत्र प्रकाशित है अतः कुछ लिखना पुनरावृत्ति मात्र होगा। हाँ, इतना ही कह सकते हैं कि आपने अपने उच्चतर व्यक्तित्व, उत्कृष्ट आचार और विशद् विचारों से जो आदर्श चतुर्विध संघ के समक्ष रखा है, उसका हम सभी अनुसरण कर स्वपर कल्याण करते रहें और आपश्री दीर्घजीवी होकर हमें मार्ग-दर्शन कराते रहें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य प्रवर के तत्त्वावधान में आज ऋषि सम्प्रदाय के अनेक तेजस्वी, धीर, गम्भीर प्रभावशाली मुनिवर धर्मोद्योत कर रहे हैं—विद्वद्वर श्री मोहन ऋषि जी म०, प्रवर्तक श्री विनय ऋषि जी म०, पं० श्री कल्याण ऋषि जी म० आदि सन्तों का समूह ऋषि परम्परा को ज्योतिर्मान कर रहा है।

ऋषि सम्प्रदाय की महासतियाँ—

इतिहास की यह एक कमी रही है कि उसमें पुरुष वर्ग के कार्यों का तो अंकन होता रहा वहाँ महिला वर्ग को उपेक्षणीय जैसा माना है। यही कारण है कि पुण्यश्लोका महिलाओं के बारे में हमारी जानकारी नहीं जैसी है। ऋषि सम्प्रदाय के महर्षियों का इतिवृत्त तो यत्किंचित् रूप से सं० १६९२ से मिलता है, लेकिन महासतियों में उस समय कौन विराजमान थे यह जानना कठिन है। किन्तु प्रतापगढ़ भण्डार से प्राप्त एक प्राचीन पत्र से ज्ञात हुआ कि सं० १८१० वैशाख शुक्ला ५ मंगलवार को पंचेश्वर ग्राम में चार सम्प्रदायों का सम्मेलन हुआ था, उसमें ऋषि सम्प्रदाय की तरफ से सन्तों में पूज्य श्री तारा-ऋषि जी म० और सतियों में श्री राधाजी म० उपस्थित थे।

ऋषियों के इतिवृत्त से स्पष्ट है कि पूज्य श्री लवजी ऋषि जी म० के पाट पर क्रमशः पूज्य श्री सोमऋषि जी, पूज्य श्री कहानजी ऋषि जी, पू० श्री तारा ऋषिजी म० विराजे थे।

महासती श्री राधाजी म० का परिचय तो प्राप्त नहीं है। किन्तु इनके बारे में इतना ही कहा जा सकता है आप अपने समय की प्रभावक सतियों में से एक थीं। चतुर्विध संघ के संगठन एवं महिला-वर्ग की जागृति में महान योग दिया था। आपकी अनेक शिष्याएँ थी जिनमें महासती श्री किसना जी प्रसिद्ध थीं। महासती श्री किसना जी म० की शिष्याएँ भी जोता जी म० और उनकी शिष्या श्री मोता जी म० हुईं। श्री मोता जी म० की अनेक शिष्याओं में श्री कुशालकुँवर जी म० का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने जैन धर्म की विशेष प्रभावना की। अतः यहाँ महासती श्री कुशाल कुँवर जी म० से लेकर कुछ एक सतियाँ जी का परिचय दिया जा रहा है।

महासती श्री कुशलकुँवर जी महाराज

आप मालवा प्रान्त में बागड़देशीय हावड़ा ग्राम की थीं। आपने श्री मोता जी म० के पास उत्कृष्ट वैराग्य भाव से दीक्षा ग्रहण की थी। आप प्रभावक एवं संयमनिष्ठ सती थीं। आपके व्याख्यान सुनने बड़े-बड़े राजा, जागीरदार आदि भी आया करते थे। एक बार पूज्य श्री धनऋषि जी म० की उपस्थिति में सन्त सतियों ने एकत्रित होकर समाचारी रचना की थी। (उस समय ऋषि सम्प्रदाय में करीब १२५ सन्त और १५० सतियाँ विचरती थीं)। इनके ज्ञान और चारित्रिक धर्म से प्रभावित होकर सभी सन्त सतियों में आपको अग्रणी रखा और प्रवर्तिनी के पद से सुशोभित किया। आपकी २७ शिष्यायें हुई थीं। उनमें से लिखित चार सतियां जी के नाम उपलब्ध होते हैं—

१. महासती श्री सरदाराजी म०, २. श्री धन कँवरजी म० ३. श्री दयाजी म०, ४. लक्षमाजी म०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनमें से महासती श्री दयाजी म० और महासती श्री लक्षमाजी म० की ही शिष्य परम्परा चली।

महासती श्री सरदारा जी म०

आपने प्रवर्तिनी श्री कुशलकंवर जी म० से दीक्षा ग्रहण की थी। महासती श्री रंभाजी म० से बहुत स्नेह रखती थीं और दोनों साथ-साथ विचरण किया करती थीं। प्रकृति से आप सरल, भद्र परिणामी थीं। धार्मिक और शास्त्रीय ज्ञान अनूठा था। जनता आपके व्याख्यान सुनकर मुग्ध हो जाती थी।

महासती श्री धनकंवर जी म०

आपका अधिक समय अपनी गुरुणी जी प्रवर्तिनी श्री कुशलकुँवर जी म० की सेवा में बीता। मालवा, मेवाड़ में विचरण कर आपने धर्मोपदेश द्वारा जनता को सन्मार्ग का दर्शन कराया। आप तपस्वनी सती थीं। आपकी शिष्याएँ कितनी थीं इसका क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता है। एक नाम मिलता है— महासती श्री फूलकुँवर जी म०। इनके शिष्य परिवार में महासती श्री सरसा जी म०, श्री केसर जी म०, श्री रंभा जी म० हुए हैं। इनका भी परिचय प्राप्त नहीं है।

महासती श्री दयाकंवर जी म०

आप श्री कुशलकंवर जी म० की शिष्या थीं। शास्त्रीय ज्ञान से ओत-प्रोत होने के कारण आपका व्याख्यान प्रभावशाली होता था। आपका विहार क्षेत्र मालवा, मेवाड़, बागड़ आदि प्रान्त रहे हैं।

जीवन के अन्तिम दिनों में आप रतलाम विराजती थीं। एक दिन रात्रि में तीसरे पहर जागकर आपने अपनी विदुषी महासती श्री गेंदा जी म० से पूछा कि रात्रि कितनी शेष है। तीसरा प्रहर बीतने की बात जानकर तथा अपने शारीरिक लक्षणों में अपना अन्तिम समय जानकर संथारा लेने का कहा और यह भी कह दिया कि यह संथारा २५ दिन चलेगा। तब सती श्री गेंदाजी के खाचरौद में विराजित महासती श्री गुमान कंवर जी म० आदि ठा० को समाचार देने का निवेदन करने पर आपने कहा कि वे तीन दिन में रतलाम आ जायेंगी, समाचार देने की जरूरत नहीं है। हुआ भी ऐसा ही ठीक पच्चीसवें दिन संथारा सीझा और खाचरौद से सतियाँ जी तीसरे दिन रतलाम पधार गईं।

आपकी शिष्याओं में महासती श्री धीसा जी, श्री झुमकू जी, श्री हीराजी, श्री गुमाना जी, श्री गंगाजी, श्री मानकंवर जी म० प्रसिद्ध हैं। इनमें से श्री झुमकू जी म०, श्री गंगाजी म०, श्री हीराजी म०, श्री गुमाना जी म० की शिष्य परम्परा आगे चली।

महासती श्री झुमकू जी म०

आप पिपलोदा निवासी श्री माणकचन्द जी नांदेचा की सुपुत्री थीं। सं० १९२१ में आपको दीक्षा के उपलक्ष में इनकी बड़ी माताजी ने रतलाम में साहू बाबड़ी के समीप एक धर्म स्थानक भेंट दिया था। आपके द्वारा मालवा और दक्षिण में अच्छा धर्म प्रचार हुआ। आपकी १६ शिष्याएँ हुईं। इन शिष्य सतियों की उत्तरवर्ती काल में शिष्य परम्परा चल रही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासती श्री हीरा जी म०

आप ऋषि सम्प्रदाय की सती मंडल में हीरे के समान प्रभावशाली और दीप्तिमान उज्ज्वल हैं। आपका जन्म-स्थान रतलाम और पिता का नाम श्री दुलीचन्द जी सुराना और माता का नाम नानूबाई था। बाल्यावस्था में आपकी सगाई हो चुकी थी। माताजी को दीक्षा लेने के लिए प्रवृत्त देकर आप भी दीक्षा लेने को तैयार हुईं। परिवार वालों की ओर से प्रलोभन दिये जाने पर भी आप विचलित नहीं हुईं। अच्छा शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया।

सं० १९३५ में जावरा चातुर्मास पूर्ण कर जब पूज्य श्री तिलोक ऋषि जी म० दक्षिण की ओर पधारे, तब आपने भी दक्षिण में विचरने के लिए प्रस्थान किया। सं० १९४० में पूज्य श्री तिलोक ऋषिजी म० का देवलोक हो जाने पर आपकी प्रेरणा से पूज्य श्री रत्नऋषि जी म० ज्ञानाभ्यास के लिए मालवा में पधारे और अल्पवय में ही पूज्यश्री अच्छे शास्त्रज्ञाता और विद्वान बने। आपकी १३ शिष्याएँ हुईं।

ऋषि सम्प्रदाय के विकास में आपका योगदान सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जायेगा।

प्रवर्तिनी श्री सिरेकंवर जी म०

आपका जन्म सं० १९३५ में येवला निवासी श्री रामचन्द जी की धर्मपत्नी श्रीमती सेरुबाई की कुक्षि से हुआ था। आप राहुरी निवासी श्री ताराचन्द जी बाफणा के साथ विवाहित भी हुईं किन्तु सौभाग्य अल्पकाल का रहा। आपने सं० १९५४ आषाढ़ कृष्णा ४ को पूज्य श्री रत्नऋषि जी म० से भागवती दीक्षा अंगीकार की। आप प्रकृति से भद्र और विदुषी थीं। सं० १९९१ चैत्र कृष्णा ७ को पूना में आयोजित ऋषि सम्प्रदाय के सती सम्मेलन में आपको प्रवर्तिनी पद से अलंकृत किया गया था। अधिकतर आपका विहार दक्षिण में हुआ। सं० २०२१ में आपका घोड़नदी में स्वर्गवास हो गया।

पंडिता प्र० श्री सायरकंवर जी म०

जेतारण (मारवाड़) निवासी श्री कुन्दनमल जी बोहरा की धर्मपत्नी श्री श्रेयकंवरजी की कुक्षि से सं० १९५८ कार्तिक वदी १३ को आपका जन्म हुआ था। सिकन्द्राबाद निवासी श्री सुगालचन्द जी मकाना के साथ आपका विवाह हुआ। गृहस्थ जीवन में आपकी प्रकृति विशेषतया धर्म की ओर झुकी हुई रही। सं० १९८१ फागुन कृष्णा २ को मिरी में पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी म० के मुखारविन्द से ३२ वर्ष की उम्र में आपने दीक्षा ग्रहण की और तपस्विनी जी महासती श्री नन्दू जी म० की नेश्राय में शिष्या हुईं।

आपकी धारणा शक्ति अच्छी थी। अतः अल्पकाल में अनेक सूत्र, थोकड़े कंठस्थ कर लिए। ज्ञान चर्चा में विशेष रुचि रखती थीं। प्रभावक व्यक्तित्व के कारण अनेक कुव्यसनियों को कुव्यसनों से मुक्त कराया। आपका अधिकतर विहार दक्षिण और मद्रास प्रान्त में हुआ, वहाँ आपके सदुपदेश से अनेक धार्मिक संस्थाएँ स्थापित हुईं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं० २००१ में प्रवर्तिनी श्री सिरेकंवर जी म० के देवलोक हो जाने से हैदराबाद में मुनि श्री कल्याण ऋषि जी म० की उपस्थिति में आपको प्रवर्तिनी पद से अलंकृत किया गया। धार्मिक, शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना के लिये आप सदैव प्रेरणा देती रहती हैं।

महासती श्री रामकंवर जी महाराज

आपके पिताजी का नाम घोड़नदी (पूना) निवासी श्री गम्भीरमल जी लोढ़ा था और माता का नाम चम्पाबाई। आपका लौकिक नाम छोटीबाई था। अठारह वर्ष की उम्र में आपके पति का वियोग हो गया। आप माता-पिता की इकलौती सन्तान थीं और उसके भी विधवा हो जाने से उन्हें विशेष दुख था। वे दोनों संयम मार्ग पर अग्रसर होने के विचार में रहते थे। इसके लिए वे मालवा में आये लेकिन दक्षिण की ओर सन्त सतियों ने मार्ग की बीहड़ता के कारण विहार करने में असुविधा बतलाई। जावरा में विराजित पूज्य श्री तिलोक ऋषि जी महाराज से भी अपनी भावना जताई। आपने दक्षिणकी ओर विहार करने की स्वीकृति दी। सं० १९३६ अषाढ़ शु० ९ को माता सहित आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई और महासतीजी श्री हीराजी म० के नेश्राय में शिष्या हुईं। दीक्षा के बाद आपकी माताजी श्री चम्पाजी म० के नाम से विख्यात हुईं। आपका नाम महासती श्री रामकंवर जी रखा गया।

आपने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया। स्वभाव नम्र और सेवाभावी था। दक्षिण प्रान्त में पूज्य श्री तिलोक ऋषिजी म० द्वारा जैनधर्म के प्रचार का जो कार्य प्रारम्भ किया गया था उसे पूज्य श्री रत्नऋषि जी म० ने अपने प्रयत्नों से अनेक गुना विकसित कर दिया।

आपका संयमी जीवन ५३ वर्ष तक रहा। शारीरिक शिथिलता के कारण चार वर्ष धोड़नदी में स्थिरावास किया। यहीं सं० १९८९ कार्तिक कृष्णा २ को मध्य रात्रि के बाद पाँच प्रहर के अनशन पूर्वक इस भौतिक शरीर का त्याग किया। आपकी २३ शिष्याएँ हुईं।

विदुषी महासती श्री सुमतिकंवर जी म०

आपका जन्म सं० १९७३ चैत्र शु० १० को घोड़नदी में हुआ था। पिता-माता के नाम क्रमशः श्री हस्तीमल जी दुगड़ और श्रीमती हुलासबाई था। आपने बाल्यकाल से ही महासती श्री रामकंवर जी म० से धार्मिक शिक्षा प्राप्त की थी। आप जन्मजात मेधावी और प्रतिभाशालिनी हैं। आप बाल्य-काल से ही दीक्षा लेने की प्रवृत्ति रखती थीं। विवाह के १८ माह बाद ही पति का देहावसान हो जाने के पश्चात तो आपका एकमात्र लक्ष्य संयम ग्रहण करने का हो गया। इसके लिए आपको पितृ पक्ष और श्वसुरपक्ष से आज्ञा प्राप्त करने में काफी समय लगा, अन्त में स्वीकृति मिल गई। सं० १९९२ पौष शुक्ला २ को कोंडेगव्हाण ग्राम में आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई और महासती श्री शान्तिकंवर जी म० की नेश्राय की शिष्या बनी। नाम सुमतिकंवर रखा गया।

दीक्षा के बाद आपने संस्कृत प्राकृत, न्याय, व्याकरण, आगम साहित्य आदि का अच्छा अध्ययन किया। आपकी विद्वता का सभी क्षेत्रों में प्रभाव पड़ता है। जहाँ भी विहार या चातुर्मास होता है, जनता आप की विद्वता सेलाभ उठाती है। देश के सभी क्षेत्रों में आपने विहार किया है और आज भी अपनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयम साधना एवं विद्वता से जनता को धार्मिकता का संदेश दे रही हैं। आपके समान ही आपकी शिष्याएँ भी विद्वान और प्रभावशाली हैं।

विदुषीरत्न प्रवर्तिनी श्री उज्ज्वलकुंवर जी म०—

आप अपनी मातुश्री चंचल बहिन (महासती श्री चन्दनबाला जी म०) के साथ-साथ दीक्षित हुई थीं। सुशिक्षिता माता की सुपुत्री होने एवं बाल्यकाल से ही कुशाग्र बुद्धि होने के कारण आपने अच्छा अध्ययन किया। दीक्षित होने के पश्चात आपका अध्ययन निरन्तर विकसित होता रहा और न्याय, व्याकरण, तत्वज्ञान आदि विविध विषयों एवं जैन आगमों का गम्भीर अध्ययन किया। पाँच भाषाओं का पूर्णतया ज्ञान है। अंग्रेजी में तो आप धाराप्रवाह बोलती हैं। रवीन्द्र साहित्य का खूब पर्यालोचन किया है। आपकी विद्वत्ता से आबालवृद्ध प्रभावित हैं।

समग्र जैन समाज के साध्वी वर्ग में ही क्या, किन्तु श्रमणवर्ग में भी आप जैसी विदुषी प्रतिभाशालिनी एवं प्रवचनकुशल प्रतिभाएँ विरल ही हैं।

सं० १९९६ फागुन शुक्ला ५ को खामगाँव में आपको प्रवर्तिनी पद से विभूषित किया गया। आपका विहार क्षेत्र प्रायः दक्षिण रहा है। आजकल स्वास्थ्य अनुकूल न होने से अहमदनगर धोड़नदी आदि क्षेत्रों में प्रायः विचरती हैं। आपकी शिष्याएँ भी विदुषी और अनेक भाषाओं में प्रवीण हैं। जो दूर-दूर क्षेत्रों में धर्म प्रचार कर रही हैं।

पूर्वोक्त साध्वी वृन्द के अतिरिक्त अन्य अनेक महान् भाग्यशालिनी महासतियाँ ऋषि सम्प्रदाय की गौरव-गरिमा को उज्ज्वल बना रही हैं। सभी अपनी संयम साधना और विद्वता से जिन शासन की सेवा में संलग्न हैं। स्थानाभाव से यहाँ उन सबका परिचय देना शक्य नहीं है। अतः पाठकगण क्षमा करेंगे।

उपसंहार—

पूर्व में ऋषि सम्प्रदाय के कतिपय महाभाग सन्तों और सतियों के परिचय की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। उस परिचय में अधूरापन भी रहा होगा। लेकिन इतना तो मानना ही होगा कि ऋषि सम्प्रदाय के सन्त एवं सतियों ने भगवान महावीर के शासन की प्रभावना को चारों दिशाओं में व्याप्त किया है।

इसके साथ ही ऋषि सम्प्रदाय की सबसे बड़ी देन है—शिथिलाचार के विरुद्ध क्रान्ति। साध्वाचार के विपरीत होने वाली प्रवृत्तियों के उन्मूलन के लिए क्रान्तिवीर लोंकाशाह ने जो शंखनाद किया था, उसको पूज्य श्री लवजी ऋषि जी म० जैसे महापुरुषों ने अनेक परिषहों को सहन करते हुए सुरक्षित रखा और इन पाँच सौ वर्षों में उसे जन-जन के मानस में प्रतिष्ठित कर दिया है।

ऋषि सम्प्रदाय के सन्तों का विहार भारत के कोने-कोने में हुआ है। प्रारम्भ में तो गुजरात-काठियावाड़ ही इस सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र रहा, लेकिन उसके बाद पूज्य श्री सोमजी ऋषि जी म० की आज्ञा से पं० श्री हरदास जी म० ने पंजाब में, पूज्य श्री कहान जी ऋषि जी म० ने मालवा में, पू० श्री तिलोक ऋषि जी म० ने महाराष्ट्र में, पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी म० ने कर्णाटक में, पूज्य श्री देवजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषि जी म० ने छत्तीसगढ़, सी० पी० में सर्वप्रथम पदार्पण करके नये क्षेत्रों में स्थानकवासी परम्परा को सुदृढ किया है। आचार्य प्रवर श्री आनन्द ऋषि जी म० का विहार क्षेत्र तो सम्पूर्ण भारत ही रहा है। राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि भारत का अधिकतम क्षेत्र आपकी धर्म यात्राओं से प्रभावित हो चुका है।

ज्ञान प्रचार और साहित्य सेवा की दृष्टि से ऋषि सम्प्रदाय के सन्तों एवं आचार्यों के प्रयत्न अपना अनूठा स्थान रखते हैं। पं० रत्न श्री अमीऋषि जी म०, पूज्य श्री तिलोक ऋषि जी म० के पदों की गूंज तो हम प्रतिदिन सुनते ही हैं। पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी म० द्वारा किये गये आगम साहित्य के सम्पादन एवं प्रकाशन के लिए कृतज्ञता व्यक्त करना हमारा एक अल्प प्रयास सा माना जायेगा। आज भी उन महाभागों की परम्परा निर्वाह करते हुए पूज्य आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी म० ज्ञान प्रचार एवं साहित्य सेवा में संलग्न हैं और उनके अन्तेवासी शिष्य भी।

ऋषि सम्प्रदाय प्रारम्भ से ही संगठन का हिमायती रहा है। एक समाचारी, एक संगठन बनाने के लिए सदैव प्रयास किये गये और उसमें सफलता मिली। सादड़ी वृहत् साधु सम्मेलन आज के युग के संगठन का एक स्मरणीय प्रयास था। इस सम्मेलन को सफल बनाने में ऋषि सम्प्रदाय के सन्तों, सतियों एवं आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी म० ने पूरा योग दिया था। एक श्रमण संघ के निर्माण के लिए अपने सम्प्रदाय का विलीनीकरण कर चतुर्विध संघ के समक्ष आदर्श उपस्थित किया था। श्रमण संघ के प्रधान-मंत्री पद पर आसीन होकर आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी म० ने साधु संस्था को ज्ञान, संयम, साधना का सफल प्रयास किया और अब आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होकर संघ सेवा कर रहे हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि ऋषि सम्प्रदाय के सन्तों एवं सतियों ने संघ एवं शासन की चिरस्मरणीय अनुकरणीय सेवा करते हुए साधुता के स्तर को सदैव उच्च से उच्चतम रखकर उसके शास्त्रीय आदर्शों को उजागर किया है। □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org